**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 93-95**
**I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)**
**e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)**
**Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025**

# भारतीय राजनीति में गठबंधन की बढ़ती प्रवृत्ति

**ब्यूटी कुमारी**
शोध अध्येत्री– राजनीति विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार) भारत

**Received-08.04.2025, Revised-15.04.2025, Accepted-21.04.2025** **E-mail : beautykumari99k@gmail.com**

***सारांशः आज की सियासत की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि हम गठबन्धन यानी अलायंस के जमाने में चल रहे हैं। कोई नहीं जानता है कि यह दौर कब खत्म होगा। ऐसे समय में गठबन्धन धर्म को सबसे बड़े मंत्र की तरह दोहराया जाता है गठबन्धन बनाने और चलाने के चैलेंज का अहसास सबको है। लेकिन क्या वजह कि इसके बावजूद हमारे देश में पालिटिकल अलायंस का कल्चर उस तरह से मजबूत नहीं हो पाया है जैसा यूरोप के कई देशों में पाया जाता है । हमारे यहाँ गठबन्धन या अलायंस हमेशा कमजोर रहे हैं। उनका वजूद अक्सर खतरे में दिखाई पड़ता है, जैसा समय–समय पर निजी स्वार्थ के कारण दिखता है । साझेदारी को लेकर तनाव पैदा होते रहते हैं और समर्थन के नाम पर सियासी ब्लैकमेलिंग का बोलबाला है।***

*कुंजीभूत शब्द– भारतीय राजनीति, गठबंधन, सियासत, अलायंस, वजूद, तनाव, ब्लैकमेलिंग, साझेदारी, रजामंदी, समर्थन*

हमारे देश में गठबन्धन या अलायंस रजामंदी का खेल नहीं, मजबूरी का सौदा लगता है। हमारे देश में गठबन्धन की राजनीति में समय–समय पर चुनौतियां और खामियां आती रही हैं।[1]

"मिली–जुली सरकारों की संरचना केवल मिश्रित प्रकार के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव होती है जहाँ पर संघर्ष तथा समान हित एक साथ उपस्थित रहते हैं और भावी गतिविधि को नियंत्रित करते हैं।" गैमसन

'कोलीसन' शब्द की उत्पत्ति लातीन भाषा के शब्द 'कोलीशियो' से हुई है, जिसकी उत्पत्ति स्वयं 'कोलेसर' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है– 'एक साथ बढ़ना' ।

राजनीतिक लाभ के उद्देश्य से जब कुछ राजनीतिक दल एक सामान्य कार्यक्रम के आधार पर मिल जाते हैं और इस प्रकार गठबन्धन बनाकर सरकार की स्थापना करते हैं, तो उसे मिली–जुली सरकारों की, राजनीति की संज्ञा दी जाती है। निश्चित अभीष्ट की प्राप्ति की दृष्टि से जब विविध राजनीतिक दल अपने साधनों एवं स्त्रोतों को एक साथ एकत्रित कर लेते हैं, उसे मिली–जुली सरकारों की या गठबन्धन की राजनीति कहा जाता है। संसदीय शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों का संगठन सरकारों का निर्माण करने अथवा उनकी रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरूप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है। वे एक बुनियादी कार्यक्रम के ऊपर एकमत होती है। जो दल सबसे बड़ा होता है वह एक या एक से अधिक छोटे–छोटे दलों के साथ मिलकर बहुमत प्राप्त करने के लिए संगठन का निर्माण कर लेता है। कभी–कभी छोटे–छोटे दल बड़े दल को सत्तारूढ़ होने से रोकने के लिए गठबंधन का निर्माण कर लेते है।[2]

भारतीय लोकतंत्र के पिछले दो दशकों के कार्यकलापों ने कारगर तरीके से यह दिखा दिया है कि यहाँ गठबन्धन की राजनीति सिर्फ सतही नहीं है, बल्कि उसकी जड़े गहरी जम चुकी है। 1967 के आम चुनावों ने कांग्रेस के एकदलीय अधिकारवाद का यदि अन्त नहीं किया तो कम से कम उसे धाराशायी अवश्य ही कर दिया। भारतीय राजनीति में राजनीतिक दल तथा गठबन्धन सरकारों की उत्पत्ति चतुर्थ आम चुनावों के फलस्वरूप हुई। भारत में गठबन्धन सरकारों के उदाहरण स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भी ढूँढ़े जा सकते हैं। उदाहरणतः वर्ष 1946 में पंजाब में कांग्रेस और अकाली दल की गठबन्धन सरकार बनी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में केन्द्र में बनी कांग्रेस सरकार एक प्रकार की मिली–जुली सरकार ही थी। इसमें समाजवादी पार्टी और हिन्दू महासभा के डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे सदस्य भी शामिल थे। परन्तु 1967 के आम चुनावों ने भारतीय राजनीति और शासन में एक नया युग प्रारम्भ किया। जब कांग्रेस का आधिपत्य बुरी तरह से टूट गया और गैर–कांग्रेसी संविद मंत्रिमण्डलों ने भारत में राज्यों की राजनीति के सन्दर्भ में काफी जगहों को उससे छीन लिया। 1967 के चुनाव के बाद बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडू, हरियाणा और पंजाब में गैर कांग्रेसी संयुक्त मंत्रिमण्डलीय सरकारें बनी।

1962 के युद्ध में भारत के चीन के हाथों पराजित होने के बाद नेहरू का चमत्कारिक नेतृत्व घटना शुरू हो गया। विपक्ष में मोर्चा पर डॉ० लोहिया जैसे नेताओं ने " कांग्रेस हटाओ देश बचाओ का नारा दिया और इसके फलस्वरूप एक शक्तिशाली मोर्चे के रूप में गैर–कांग्रेसवाद विकसित हुआ। 1967 के चौथे आम चुनावों की कामयाबी ने गैर–कांग्रेसी ताकतों को निडर एवं महत्वाकांक्षी बना दिया और वे दिल्ली की सत्ता पर आधिपत्य जमाने के लिए प्रयत्न करने लगी। राजनीतिक परिस्थितियों ने विपक्ष को बढ़ावा दिया। 1969 में कांग्रेस सिंडीकेट और इंडीकेट में बंट गई। इंदिरा गाँधी की सरकार अल्पमत में आ गयी। अपनी सरकार को बचाने के लिए इंदिरा सरकार को अकाली दल तथा भाकपा की शरण लेनी पड़ी। 1971 में जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी संगठन कांग्रेस और संसोपा ने मिलकर एक शक्तिशाली गठबन्धन बनाया। जून 1975 में आपातकाल इंदिरा गाँधी सरकार को भारी पड़ा जिसके फलस्वरूप 1977 के लोकसभा चुनाव में उन्हें पराजय का मुंह देखना पड़ा। चुनावों के दौरान बनी जनता पार्टी ने पूर्ण बहुमत हासिल कर लिया और मोरारजी देसाई के नेतृत्व में पहली बार गैर–कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। संयुक्त मोर्चे की 1967 में शुरू हुई विजय यात्रा को केन्द्र में कांग्रेस को सत्ता से हटाने में दस साल लगे । केन्द्र की जनता पार्टी की सरकार केन्द्रीय स्तर पर पहली गठबन्धन सरकार थी। इस सरकार में कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय लोकदल, सोशलिस्ट पार्टी और लोकतांत्रिक कांग्रेस शामिल थे। परन्तु जनता पार्टी में घटकवाद व्याप्त था। नेताओं की महत्वाकांक्षा के कारण पार्टी व सरकार में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो गया, इसका नतीजा यह हुआ कि जनता पार्टी और उसकी सरकार स्थिर नहीं रह सकी। सरकार का असामयिक पतन हो गया।[3]

1980 में इंदिरा गाँधी को सत्ता में पुनः काबिज होने के बाद उनका पूरा नजरिया ही बदल गया। वे गरीबों, अल्पसंख्यकों और आम लोगों के बजाय अपने व्यक्तिगत करिश्में, दमनकारी और प्रबंधकीय उपायों पर ज्यादा भरोसा करने लगी । चंद लोग ही इस बात को समझ सके हैं कि देश के काम–काज में लोकलुभावनकारी तौर–तरीकों की जगह प्रबन्धकीय तौर–तरीकों के इस्तेमाल का मतलब श्सेकुलरश राजनीति के बदले 'साम्प्रदायिक' राजनीति की ओर बढ़ना था। 1982–83 तक गरीबी हटाओ के नारों का आकर्षण समाप्त हो चुका था और कांग्रेस का ठोस वोट बैंक माने जानेवाले अल्पसंख्यक, आदिवासी और गॉव के गरीब उससे दूर जाने लगे। कांग्रेस का गढ़ समझे जानेवाले राज्यों में भी सत्ता के सूत्र उनके हाथों से खिसकते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में हर कीमत पर सत्ता में

**अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक**

बने रहने की श्रीमती इंदिरा गाँधी की चाहत ने उन्हें इस बात के लिए मजबूर किया कि वे कोई दूसरा रास्ता ढूँढ़े और एक वैकल्पिक विजयी गठबन्धन का निर्माण करें। ऐसा गठबन्धन उन्हें देश के हिन्दी भाषी राज्यों में लगभग तैयार मिल गया, लेकिन अक्टूबर 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या हो गई।[4]

राजीव गाँधी ने माँ की हत्या से पैदा हुई सहानुभूति की लहर पर सवार होकर अपने नाना जवाहर लाल नेहरू से भी बड़ा बहुमत जीतने में कामयाबी हासिल की थी, लेकिन उनकी सरकार का अन्त 1989 के आम चुनावों ने किया, जब उन्हीं के मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्री और रक्षा मंत्री रहे विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में विपक्ष ने एक जुट होकर उन्हें पराजित कर दिया। वी. पी. सिंह के साथ कांग्रेस से निकले नेताओं की कतार भी थी। दलीय प्रणाली के लिहाज से यह एक 1977 जैसा नजारा था, फर्क यह था कि नयी सरकार अल्पमत की थी और उसे बने रहने के लिए एक तरफ कम्युनिस्टों का और दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टी (पूर्व जनसंघ) के समर्थन की जरूरत थी। यह एक बेहद अस्थिर बंदोवस्त था जिसका शीघ्र अंत होने पर कोई आश्चर्यचकित होनेवाली बात नहीं थी। राजीव गाँधी ने 'मिस्टर क्लीन' के रूप में अपनी राजनीतिक यात्रा शुरू की थी, परन्तु उसका अन्त रक्षा सौदों में हुए भ्रष्टाचार में आरोपित देश के पहले प्रधानमंत्री के रूप में हुआ। नये प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह की छवि तो ईमानदार की थी पर राजनीतिक रूप से उनका पिछला रिकार्ड अच्छा नहीं था। सत्ता में कुछ समय रहने के बाद वी पी सिंह और हरियाणा के नेता देवीलाल के साथ उनके संघर्ष और मुखर हो गये। मण्डल आयोग की रिपोर्ट को एक राजनीतिक अस्त्र की तरह इस्तेमाल करने का विचार सम्भवतः इसी कारण उनके दिमाग में आया। जब वी. पी. सरकार ने मण्डल रिपोर्ट को लागू करने का फैसला कर लिया तो विश्वविद्यालयों में उत्पात मचने लगा, बुद्धिजीवी ध्रुवीकरण होने लगा तो बड़ी बेचौनी पैदा हुई। पहले वी पी सिंह का इतिहास पिछड़े वर्ग के विरोध का था। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने दस्यु उन्मूलन अभियान चलाया था।[5]

नब्बे का दशक कुछ ताकतवर पार्टियों और आन्दोलनों के उभार का साक्षी रहा है। इन पार्टियों और आन्दोलनों ने दलित तथा पिछड़ा वर्ग (अन्य पिछड़ा वर्ग) की नुमाइंदगी की। कुछ राजनीतक दलों ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं की भी दमदार दावेदारी की। 1996 में बनी संयुक्त मोर्चे की सरकार में इन पार्टियों ने अहम किरदार निभाया। संयुक्त मोर्चा 1989 के राष्ट्रीय मोर्चा के ही समान था, क्योंकि इसमें भी जनता दल और कई क्षेत्रीय पार्टियाँ शामिल थीं। इस बार भाजपा ने सरकार को समर्थन नहीं दिया। संयुक्त मोर्चा की सरकार को कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था। इसी से पता चलता है कि राजनीतिक समीकरण किस प्रकार छुई–मुई थे। सत्य ही कहा जाता है कि राजनीति में न ही कोई स्थायी दोस्त होता है न ही दुश्मन। राजनीति में दोस्त और दुश्मन दोनों स्वार्थ के अनुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं। जैसे 1989 में भाजपा और वाममोर्चा दानों ने राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार का समर्थन किया था, क्योंकि ये दोनों ही कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे। इस बार वाममोर्चा ने गैर–कांग्रेसी सरकार को अपना समर्थन जारी रखा, लेकिन संयुक्त मोर्चे की सरकार को कांग्रेस पार्टी ने समर्थन दिया, क्योंकि कांग्रेस और वाममोर्चा दोनों ही इस बार भाजपा को सत्ता से बाहर रखना चाहते थे। लेकिन इन्हें ज्यादा दिनों तक सफलता नहीं मिली। भाजपा 1991 तथा 1996 के चुनावों में लगातार मजबूत हुई 1996 के चुनावों में यह सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। इस नाते भाजपा को सरकार बनाने का मौका मिला। लेकिन भाजपा की नीतियों के कारण अधिकांश दल उसके खिलाफ थे और इस वजह से भाजपा की सरकार लोकसभा में बहुमत हासिल नहीं कर सकी। अन्त में भाजपा के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन बना। मई 1998 में राजग सत्ता में आयी जो जून 1999 तक रही। अक्टूबर 1999 में राजग पुनः सत्ता में आयी और कार्यकाल भी पूरा किया। राजग के सरकार में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी थे।[6]

1996–97 की संयुक्त मोर्चे की सरकार मिली–जुली सरकार का तीसरा उदाहरण था। यह गठबन्धन सरकार 1996 के ग्यारहवें आम चुनाव के बाद उत्पन्न त्रिशंकु संसद की देन थी। ग्यारहवें आम चुनाव का जनादेश निःसंदेह संयुक्त सरकार के लिए था। परन्तु संयुक्त सरकार का निर्माण चुनाव में उभरी सबसे बड़ी पार्टी भाजपा के आधार पर होना चाहिए था। परन्तु रामों–वामों और क्षेत्रीय पार्टियों ने मिलकर अपने आपको 13 पार्टियों के एक ढीले गठबन्धन में बांध लिया और कांग्रेस पार्टी के बाहर से समर्थन पर संयुक्त मोर्चे के सरकार का निर्माण हुआ। संयुक्त मोर्चे सरकार के 13 पार्टियों ने प्रतिस्पर्धी के रूप में चुनाव लड़े थे। चुनाव में न तो उनका कोई साझा कार्यक्रम था और न ही कोई न्यूनतम एजेंडा और न ही उन्हें सत्ता प्राप्ति का कोई जनादेश प्राप्त था। फिर भी किसी तरह उन्होंने जनादेश को हथिया कर एच डी देवगौड़ा के नेतृत्व में 1 जून 1996 को सरकार का गठन किया। 31 मार्च 1997 को कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने पर देवगौड़ा सरकार अल्पमत में आ गयी। सम्भवतः संसदीय व्यवस्था में यह एक मात्र उदाहरण है कि चुनाव से बचने के लिए नेता को बदल लेने पर राष्ट्रपति ने लोकसभा में पराजित संयुक्त मोर्चे की सरकार को दुबारा सरकार बनाने के लिए निमंत्रण दिया और 21 अप्रैल 1997 को इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे ने केन्द्र में एक बार फिर सत्ता सम्भाली। परन्तु एक बार फिर जैन आयोग के रिपोर्ट के मुद्दे पर कांग्रेस द्वारा समर्थन वापस लेने पर 28 नवम्बर 1997 को संयुक्त मोर्चे की सरकार गिर गई। 1998 में एक बार फिर केन्द्र में संयुक्त सरकार का गठन हुआ। इस बार फिर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 18 पार्टियों के गठबन्धन (राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन) से भाजपा ने सरकार का निर्माण किया, परन्तु यह सरकार भी अल्पायु ही रही। लोकसभा में विश्वास प्रस्ताव के दौरान केवल मात्र 1 वोट से 26 अप्रैल 1998 में धाराशायी हो गई। इसके बाद 1999 में पुनः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में राजग गठबन्धन की ही सरकार बनी जिसने अपना पाँच साल का कार्यकाल पूरा किया। इसके बाद कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन बनी जो 2004 के आम चुनाव में वाममोर्चा के सहयोग से सरकार बनाये। लेकिन अमेरिका के साथ परमाणु करार के कारण वामपंथियों ने अपना समर्थन वापस ले लिया। फिर भी कांग्रेस के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली समाजवादी पार्टी के सहयोग से पाँच साल सरकार चलाने में कामयाब रही। 2009 के लोकसभा के आम चुनाव से पहले वामदलों के नेतृत्व में तीसरे मोर्चे का गठन हुआ। इसके बाद फिर लालू यादव के नेतृत्व में चौथे मोर्चे का भी गठन हुआ। लेकिन यह गठबन्धन केवल ब्लैकमेलिंग के लिए बनाया गया था। वे कुछ मुद्दों पर आधारित समर्थन संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार को करते, लेकिन 2009 के लोकसभा के आम चुनाव में वह मौका ही नहीं आया कि वे लोग चौथे मोर्चे का फायदा उठा सकें। पुनः 2009 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार बनी। पुनः मनमोहन सिंह दूसरे कार्यकाल के लिए प्रधानमंत्री बनाये गए।[7]

इस तरह 1989 के चुनावों से भारत में गठबन्धन की राजनीति के एक लम्बे दौर की शुरूआत हुई। इसके बाद से केन्द्र में 10 सरकारें बनी। ये सभी या तो गठबन्धन सरकारें थी या दूसरे दलों के समर्थन पर टिकी अल्पमत की सरकारें थी जो इन सरकारों में शामिल नहीं हुए। इस नये दौर में कोई सरकार क्षेत्रीय पार्टियों की साझेदारी अथवा उनके समर्थन से ही बनायी जा सकती थी।

यह बात 1989 के राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार, 1996–97 की संयुक्त मोर्चे की सरकार, 1998 और 1999 की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन की सरकार की सरकार तथा 2004 तथा 2009 की संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार पर समान रूप से लागू होती है।[8]

निष्कर्ष–वर्तमान समय के अनुसार कहा जा सकता है कि गठबन्धन की राजनीति काफी समय तक टिकेगी। राजनीति दलों से लोगों का मोह भंग हो रहा है और किसी भी एक पार्टी को बहुमत मिलने की सम्भावना दूर–दूर तक दिखाई नहीं देती। त्रिशंकु सरकारें ही बनती रहेगी, और जब तक ऐसा होता रहेगा तब तक गठबन्धन राजनीति का महत्व और ग्रासरूट्स राजनीति का महत्व बना रहेगा। ऐसे माहौल में हमेशा एक कारगर गठबन्धन की तलाश की जाती रही है, ऐसा कोई भी गठबन्धन अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है न ही राजग और न ही संप्रग। देश में जैसे–जैसे उत्पीड़ित तबके की राजनीतिक अहमियत बढ़ेगी वैसे–वैसे एक नयी किस्म की गठबन्धन राजनीति का मिजाज बनेगा। राष्ट्रीय पार्टियाँ और क्षेत्रीय पार्टियाँ जब आपस में जुड़ेगी तब नयी राजनीति की रचना होगी। यह गठबन्धन राजनीति का सबसे महत्वपूर्ण रूप होगा। यह ऐसा रूप होगा जैसा कोई बड़ी पार्टी काम करती है, वैसा गठबन्धन सरकार काम करेगी। गठबन्धन से होनेवाला फायदे और उनकी दुखद स्थिति देखनी है, तो मुलायम सिंह यादव और कांशी राम के गठबन्धन के नतीजे और उनके बीच के विवाद को देख सकते हैं। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ 35 से 40 प्रतिशत जनता गरीब हो वहाँ संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार में 2 करोड़ 50 हजार करोड़ रुपये के घोटाले हुए है, हम सोच सकते हैं कि जहाँ रक्षक ही भक्षक हो गए है तो उस निरीह जनता की कौन रक्षा करेगा। जिन सांसदों को, विधायकों को हम अपना रक्षक मानकर चुनते है उसके बाद वे मंत्री बन जाते हैं मंत्री बनने के बाद वे अपनी जेबें भरने लगते हैं। भूखी जनता भूखी मर जाये उन्हें कोई चिन्ता नहीं है।

अतः मैं कहना चाहता हूं कि गठबन्धन की राजनीति मजबूरी की राजनीति है, इससे सरकार के निर्णय लेने की शक्ति में कमी आ जाती है और भ्रष्टाचार काफी बढ़ जाता है, क्योंकि गठबन्धन सरकार किसी पार्टी के समर्थन पर टिकी होती है इस कारण सरकार तत्काल निर्णय लेने से बचना चाहती है। अतः गठबन्धन की राजनीति में मजबूती और निरंकुशता में कमी आती है लेकिन भ्रष्टाचार में बढ़ोत्तरी होती है। गठबन्धन सरकारों का युग लम्बे समय से जारी कुछ प्रवृतियों की परिणति है। पिछले कुछ वर्षो से भारतीय समाज में गुपचुप बदलाव आ रहे हैं और इन बदलावों से जिन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ वह भारतीय राजनीति को गठबन्धन की सरकारों के युग की तरफ ले आयी।

## संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दृष्टिकोण मंथन, 01–15 दिसम्बर 2007, पृ0 – 05.
2. जोशी, आर पी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था रू पुर्नरचना के नये आयाम, आढ़ा, आर एस रावत पब्लिकेशन, जयपुर – 2000 पृ०– 210.
3. वही रू पृ0–211.
4. कोठारी, रजनी, भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली – 2005 90– 214.
5. वही, पृ0– 238.
6. उप्पल, श्वेता, स्वतंत्र भारत में राजनीति, एन०सी०ई०आर०टी० जून– 2007 पृ0–178.
7. जोशी, आर पी, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, पुर्नरचना के नये आयाम, आढ़ा, आर एस रावत पब्लिकेशन, जयपुर – 2000 पृ०–213.
8. उप्पल, श्वेता रू स्वतंत्र भारत में राजनीति, एन०सी०ई०आर०टी० जून– 2007, पृ0–178.

*****